प्रतिहारकाल में शिक्षा

शोधपत्र-इतिहास

* डॉ. शिल्पा गोयल

शिक्षा वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए ही नहीं, अपितु सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए भी अपरिहार्य है। हमारे पूर्वजों ने शिक्षा की इस महत्ती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सुदूर अतीत में भी शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा–पद्धति से सैकड़ों वर्षों तक भारत का वैदिक साहित्य ही सुरक्षित नहीं रहा, अपितु प्रत्येक युग में दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, रसायन आदि विविध शास्त्रों और ज्ञान के क्षेत्र में ऐसे विचारक और विद्वान उत्पन्न हुए जिनसे हमारे देश का मस्तक यश–गौरव और आत्माभिमान से अभिभूत रहा है। प्राचीन शिक्षा पद्धति के स्वरूप में विभन्न कालों में आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन होता रहा। प्रतिहार सम्राट अत्यन्त शिक्षा प्रेमी थे। इन्होंने अपने राज्य में अनेक विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालयों का निर्माण कराया था। उस समय नालन्दा, विक्रमशिला, पाटलिपुत्र, वल्लभी, उज्जैनी, काम्पिल्य आदि विद्या के प्रमुख केन्द्र थे। प्रतिहारकालीन शिक्षा प्रणाली के चार प्रमुख उद्देश्य थे प्रथम उद्देश्य चरित्र निर्माण था। ब्रह्मचर्य अवस्था में शिक्षा द्वारा चरित्र का गठन सुन्दर और आदर्श होता था। द्वितीय उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना था।

तपोवनों और आश्रमों में और कालांतर में विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में आचार्य संरक्षण में विद्यार्थी की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास एवं मौलिक भावनाओं व प्रवृत्तियों का प्रस्फुरण होता था। तीसरा उद्देश्य विद्यार्थी में उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य की भावना जाग्रत कर सामाजिक और नागरिक अधिकारों व कर्त्तव्यों का समुचित ज्ञान कराना था। चतुर्थ उद्देश्य प्राचीन संस्कृति और साहित्य का संरक्षण करना था। उपर्युक्त उद्देश्यों के साथ–साथ प्रतिहारकालीन भारतीय शिक्षा –पद्धति की कतिपय विशिष्टताएँ भी रही हैं, यथा–उपनयन संस्कार से विद्याध्ययन का आरम्भ, ब्रह्मचर्य अवस्था, स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, सामाजिक व नागरिक गुणों का विकास, सादा जीवन उच्च विचार, गुरू शिष्य का वैयक्तिक सम्बन्ध, साहित्यक, धार्मिक और आध्यामिक शिक्षण तथा जनोपयोगी ललित कलाओं की शिक्षा एवं विशिष्ट पाठ्य–विषय व पाठ्य–प्रणाली आदि। भारतीय समाज में प्राचीनकाल से जो योजनाबद्ध और सुनियोजित शिक्षा का प्रबन्ध था उसी के अनुरूप प्रतिहारों के समय में भी विद्यार्थी गुरू से विद्या प्राप्त कर शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करता था। उसका जीवन आमोद प्रमोद से दूर संयम व सदाचार का था। उसका भोजन सादा होता था, मांस, मदिरा, गन्ध, रस, स्त्री आदि उसके लिए निषिद्ध थी, परन्तु कालान्तर में यह प्रथा विलुप्त हो गई और तक्षशिला तथा नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए बड़े भण्डारों में से भोजन व्यवस्था होने लगी।

विद्यार्थी दो प्रकार के होते थे। एक जो अनवरत गुरू के यहाँ रहते थे। उनका जीवन गुरू के जीवन के साथ ही घुलमिल जाता था, इन्हें 'अन्तेवासी' कहा जाता था। शिक्षा पूर्ण कर जब वे अपने घर जाते थे तो उनका 'समावर्तन' संस्कार होता था। दूसरे साधारण प्रकार के विद्यार्थी होते जो प्रतिदिन गुरु के घर केवल विद्याध्ययन के लिए आते थे व पढ़ने के पश्चात् अपने घर लौट जाया करते थे। योग्यता के आधार पर राजशेखर ने तीन प्रकार के स्नातकों–बुद्धिमान, आहार्यबुद्धि और दुर्बुद्धि–का वर्णन किया है। जो केवल एक बार सुनकर अपना पाठ याद कर लेता था वह बुद्धिमान, जो बार–बार अभ्यास करके ज्ञान प्राप्त करता है वह आहार्यबुद्धि, निरन्तर अभ्यास के पश्चात् भी पाठ को याद न कर सके वह दुर्बुद्धि था।[1]

प्रतिहार काल में विद्यार्थियों को चार वेदों (ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद,) चार उपवेदों (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, इतिहास), छः वेदांगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष), पुराणों, पूर्व मीमांसा, वेदान्त, स्मृति आदि ग्रंथों का अध्ययन करवाया जाता था। इसके अतिरिक्त वारता (वाणिज्य), कृषि, दण्डनीति, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र तथा साहित्य आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। समस्त विषयों का ज्ञाता होना कठिन था तथापि मण्डोर का प्रतिहार शासक कक्क छन्द, व्याकरण, तर्क व ज्योतिषी का प्रख्यात विद्वान था। उसे बाउक के मण्डोर अभिलेख में

* प्राध्यापक इतिहास, अग्रवाल कॉलेज, जयपुर

कलानिवितम तथा सभी भाषाओं का ज्ञाता बताया गया है।[2] प्रतिहार काल में विद्या के केन्द्र विद्यामठ के नाम से जाने जाते थे। विद्यामठ नगरों व गाँवों के कोलाहल तथा हलचल से दूर, प्राकृतिक–सौन्दर्य के मध्य, वनों में शान्तिमय स्थानों पर होते थे। शिक्षा संस्थाओं को शासक गण एवं अन्य धनी लोग विद्यादान को सर्वश्रेष्ठ समझ मुक्तहस्त से गुरूजनों और विद्यार्थियों के लिए भोजन, वस्त्र तथा अन्य वस्तुएँ देकर पुण्य अर्जन करते थे। धनी और समर्थ शिष्य विद्यारम्भ से पूर्व या पश्चात् गुरूदक्षिणा के रूप में गुरू को शिक्षण शुल्क अर्पण करते थे और निर्धन विद्यार्थी अपनी सेवाओं द्वारा शुल्क का भुगतान करते थे। तक्षशिला, नालन्दा तथा पाटलिपुत्र जैसे विशाल विश्वविद्यालयों में केवल प्रवेश के समय शुल्क लिया जाता था।

प्रतिहार काल में मठों का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ विद्यार्थी निवास करते थे। उनके आवास और भोजन की व्यवस्था निःशुल्क थी। अधिकांश अध्ययन–अध्यापन मौखिक था। विभिन्न विषयों पर आचार्य लोग व्याख्यान देते थे। छात्रों को शारीरिक दण्ड भी दिया जाता था। शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् एवं समावर्तन संस्कार से पूर्व अनेक बार गुरू अपने शिष्यों को विद्वानों की मण्डलियों और परिषदों में तथा राजसभाओं में उपस्थित करते थे। वहाँ उनसे विभिनन विषयो पर प्रश्नोत्तर होता अथवा उन्हें शास्त्रार्थ में भाग लेना पड़ता था। विद्यार्थियों की योग्यता, विद्वता और पाण्डित्य की परीक्षा वाद–विवाद या शास्त्रार्थ द्वारा होती थी। प्रश्नोत्तर तथा शास्त्रार्थ के अतिरिक्त विद्वान लोग गोष्ठियों में एकत्र होकर साहित्यिक चर्चा करते थे। इन गोष्ठियों में तत्कालीन विद्या की कसौटी निहित थी। कभी–कभी शास्त्रार्थ का उद्देश्य योग्यता की कसौटी न होकर विरोधी को नीचा दिखाना होता था। राजशेखर ने कन्नौज की गोष्ठियों का वर्णन किया है। प्रतिहार काल में सुयोग्य विद्वानों, कवि, साहित्यकारों को राजा की ओर से भूमि इत्यादि प्रदान करके सम्मानित किया जाता था। कवियों का मूल्याकंन करने के लिए समय–समय पर देश मे ब्रह्य सभायें होती थी। राजशेखर ने भी 'ब्रह्यसभा' का उल्लेख किया है। ऐसी सभाएँ उज्जैन तथा पाटलिपुत्र में हुआ करती थी। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर प्रतिभावान कवियों को रथ तथा रेशम का साफा पुरस्कार में देकर सम्मानित किया जाता था।[3] राजशेखर ने स्वयं क्रमशः बालकवि, कवि तथा राजकवि नामक तीन परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी। राजकवि राजशेखर वाचन कला पर विशेष बल देते हुए लिखते हैं कि यह कार्य सरल नहीं था इसके लिए सुसंस्कृत व्यक्ति ही प्रयास कर सकते हैं। राजशेखर ने पूर्व गौड़, कर्णाट, द्रविड़, लाट, सुराष्ट, त्रवण तथा कश्मीर के कवियों के वाचन में पांचाल कवियों का उच्चारण अत्यधिक शुद्ध बताया है। काव्य मीमांसा के अनुसार बनारस के पूर्वी भागों के व्यक्ति संस्कृत आसानी से बोल तथा पढ़ सकते थे। उनको प्राकृत भाषा का ज्ञान बहुत कम था। लाट देशवासी प्राकृत भाषा बोलते, पढ़ते तथा लिखते थे, वे संस्कृत बहुत कम जानते थे। सौराष्ट्र तथा त्रवण (मरूभूमि) इत्यादि प्रदेशों में अपभ्रंश भाषा ही पढ़ाई–लिखाई के काम आती थी।[4] संस्कृत भाषा भी अपभ्रंश के साथ प्राकृत–संस्कृत के रूप मे बोली जाती थी। पांचाल प्रदेश की भाषा संस्कृत सर्वगुण सम्पन्न थी।

कर्पूर मंजरी के अनुसार पांचाल प्रदेश में अष्ठादश (18) लिपियाँ प्रचलित थी।[5] कर्पूर मंजरी के अनुसार पांचाल प्रदेश में लिखावट वैदर्भी (विदर्भ) जैसी थी।[6] कर्पूर मंजरी के अनुसार 'केतकीदल लेख' अर्थात केतक के फूलों के पत्तों पर लेख लिखा जाता था। मासीपिण्ड (दवात) तथा कलम का प्रयोग भी होता था।[7] राजशेखर ने कविता लिखते समय आवश्यक सामग्री का उल्लेख किया है– (1) स्म्पुतिका (टेबिल) (2) सफलक–खटिका (बैठने का साधन) (3) समुदगक (4) सलेखनी कमसी भाजनानी (काली स्याही का पेन) (5) तादीपत्रानी भुर्जवकोवा (पाम के पत्ते और भोजपत्र या बिरच के पत्ते) (6) सोलहकन्तकानी (लोहे की आलपिनें) (7) तालदलानी (हस्तपेन) आदि।[8] कविता लिखने हेतु राजनैतिक जागृति या प्रतिभा की विशेष जरूरत बताई है।

प्रत्येक राजधानी विद्या का केन्द्र होती थी। प्रतिहार काल में नालन्दा, काशी, कान्यकुब्ज, ग्वालियर आदि शिक्षा के बड़े केन्द्र थे। इनके अतिरिक्त अनके छोटे शिक्षा केन्द्र थे। इनमें पेहोवा, मण्डोर, इन्द्रप्रस्थ, बसन्तगढ़, भीनमाल, जालौर, मन्दसौर, अणहाल–पाटन, भृगुकच्छ, राजौरगढ़, पझावती, त्रिपुरी, गोरखपुर, पाटलिपुत्र, काम्पिल्य, विक्रमशिला, वल्लभी आदि उल्लेखनीय है। गुप्तकाल तथा हर्ष के समय कार्यरत शिक्षा के केन्द्र प्रतिहार साम्राज्य में और अधिक उन्नत हुए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. काव्यमीमांसा, पृ. 7, 11 एवं 16 2. ए.ई., भाग 18 पृ. 96 3. गुर्जर, के. आर., गुर्जर क्षत्रियों की उत्पत्ति एवं गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य, पृ.394 4. पुरी, बी.एन. , द हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतिहारस्, पृ. 127 5. राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी, भाग–2 पृ.51 6. राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी, भाग–1 पृ.1 7. राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी, भाग–2 पृ.6–7 8. काव्यमीमांसा, पृ. 50